RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 75, अंक : 55 एक प्रति 2 : रुपये
रविवार 31 मार्च, 2019
विक्रमी सम्वत् 2075, सृष्टि सम्वत् 1960853119
दयानन्दाब्द : 194 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष-75, अंक : 55, 28-31 मार्च 2019 तदनुसार 18 चैत्र, सम्वत् 2075 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

अग्निहोत्र

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः।
अभ्य१हं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः।।
-अथर्व० ६।९७।१

शब्दार्थ-यज्ञः = यज्ञ **अभिभूः** = सबको दबाने वाला है या सब ओर विद्यमान् है। **अग्निः** = आग **अभिभूः** = अभिभू है। **सोमः** = सोम **अभिभूः** = अभिभू है। **इन्द्रः** = इन्द्र **अभिभूः** = अभिभू है। **अहम्** = मैं **विश्वाः** = सब **पृतनाः** = फ़सादों को, उपद्रवों को, लड़ाकी सेनाओं को **यथा** = जैसे **अभि+असानि** = दबा सकूँ, **एवा** = ऐसे ही **अग्निहोत्राय** = अग्निहोत्रोपयोगी **इदम्** = इस **हविः** = हवि को **विधेम** = बनाएँ।

व्याख्या-यज्ञ में अग्नि, सोम, इन्द्र (आत्मा) तथा यथायोग्य सामग्री अपेक्षित होती है। जिसमें सामग्री यथाविधि हो, वह यज्ञ अवश्य ही **अभिभूः**-होता है। शतपथब्राह्मण में कथा है कि यज्ञ के द्वारा देवों ने असुरों को अभिभूत किया। सचमुच यज्ञ सर्वाभिभू है। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाला अग्नि-चाहे भौतिक चाहे आध्यात्मिक-भी अभिभू होना चाहिए। अग्नि का गुण सर्वजन प्रत्यक्ष है। सोम का यह गुण ऋग्वेद के नवम मण्डल में वर्णित है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा- **'अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या। रुज यस्त्वा पृतन्यति' [ऋ० ९।५३।३]**= इस पवमान सोम के नियम को कोई दुर्बुद्धि नहीं दबा सकता, अतः हे सोम अभिभू है। सोमपान करने वाला इन्द्र तो अवश्य ही अभिभू होना चाहिए। वेद में आदेश है-

अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाव्हाय सहमानाय वेधसे।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत।।
-ऋ० २।२१।२

अभिभू, सब ओर तोड़-फोड़ करने वाले, सम्भजनीय, असह्य, सब-कुछ सहन करने वाले, मेधावी, महाज्ञानी, कार्यवाहक, दुस्तर, सदा सहिष्णु इन्द्र को नमस्कार कहो।

जो सबको अभिभूत करने वाला है, उसे नमस्कार अवश्य करना चाहिए। यज्ञ, अग्नि, सोम तथा इन्द्र को अभिभू देखकर साधक के मन में भी 'अभिभू' बनने की भावना जागृत हुई है। वह कहता है- **'अभ्यहं विश्वाः पृतना यथासानि'**-मैं भी सब पृतनों=फ़ितनों को दबा सकूँ, उनका अभिभू बन सकूँ। अभिभू बनने की युक्ति है-सब पृतनों=फ़ितनों को दबा देना। जिसने काम, क्रोध, मोह, मत्सर, अहंकार मार दिये, उनमें उठने वाले सब पृतने=फ़ितने मिटा दिये, वह आत्मिक क्षेत्र में अभिभू है। जिसने राष्ट्र से सब वैर-विरोध हटा दिये, दुःख-दारिद्रय, अभाव मिटा दिये, वह सचमुच राष्ट्र में अभिभू है। यज्ञ=परोपकार तथा सङ्गठन सबको दबाता है। आग सबको जला देती है। सोम ओषधियों का राजा है। इन्द्र=विद्युत् सभी भौतिक पदार्थों में बलवान् है। इन सबकी भाँति जो अभिभू बनना चाहता है, वह सामग्री भी वैसी ही बनाता है। अतः कहा-**'एवा विदेमाग्निहोत्रा इदं हविः'**= इस प्रकार अग्निहोत्र के लिए यह सामग्री तैयार करें। कैसा अद्भुत अग्निहोत्र है!

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

नवसम्वत्- नव वर्ष के शुभ अवसर पर
हार्दिक बधाई

नववर्ष-नवसम्वत्सर 2076 चैत्र सुदी प्रतिपदा दिनांक 6 अप्रैल 2019 से आरम्भ हो रहा है। सृष्टि सम्वत् 1960853120 के शुभ अवसर पर तथा विक्रमी सम्वत् 2076 के शुभारम्भ पर हम आर्य मर्यादा के सभी पाठकों, आर्य समाजों व आर्य शिक्षण संस्थाओं के अधिकारियों, कार्यकर्त्ताओं, प्रिंसीपलों, अध्यापकों, प्राध्यापकों तथा सभी आर्य बन्धुओं व आर्य बहनों को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से, आर्य विद्या परिषद पंजाब की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं भेंट करते हैं व हार्दिक बधाई देते हैं।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

सुदर्शन कुमार शर्मा — प्रधान
प्रेम भारद्वाज — महामंत्री
सुधीर कुमार शर्मा — कोषाध्यक्ष
अशोक परूथी एडवोकेट — रजिस्ट्रार

समस्त अधिकारी व अन्तरंग सदस्य
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन,
चौक किशनपुरा, जालन्धर

यजुर्वेद में विद्या और अविद्या

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा। (राज.)

यजुर्वेद में विद्या और अविद्या के विषय में चालीसवें अध्याय के मंत्र संख्या 12,13 और 14 में चिन्तन हुआ है। विद्या का अर्थ उस ज्ञान से है जिसके द्वारा हम पदार्थ को उसके सही रूप में पहचान सकते हैं। विद्या के द्वारा नित्य में नित्य, अनित्य में अनित्य, धर्म में धर्म और अधर्म में अधर्म को स्पष्ट रूप में देख लेना संभव हो जाता है। विद्या ही मर्त्य को मर्त्य और अमर्त्य को अमर्त्य के रूप में जानने में सफल होती है। विद्या के भी ऋषियों ने दो रूप बताये हैं एक पराविद्या और दूसरी अपराविद्या। अपराविद्या यह है कि जिससे पृथ्वी और तृण से लेकर प्रकृति पर्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक ठीक कार्य सिद्ध करना होता है। अपरा विद्या ही हमें समाज में कैसे रहना है इसकी शिक्षा देती है। विज्ञान की सभी खोजें अपरा विद्या के अन्तर्गत ही आती है। हमारे सम्पूर्ण कर्म काण्डों का सञ्चालन भी अपरा विद्या के द्वारा ही होता है। देव यज्ञ, ब्रह्म यज्ञादि भी इसी के क्षेत्र में स्थान प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत परा विद्या ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति कराती है। वास्तव में स्वामी दयानन्द सरस्वती का तो मानना यह है कि अपरा विद्या का ही उत्तम फल परा विद्या है। ऋग्वेद का तो मानना ही यह है कि परा विद्या ही नहीं वरन् चारों वेद भी उसी की (ब्रह्म की) प्राप्ति कराने के लिए विशेष करके प्रतिपादन कर रहे हैं।

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय। दिवीव चक्षुरा-ततम्। यजु

अर्थात् जो व्यापक परमेश्वर है उसका अत्यन्त आनन्द स्वरूप, जो प्राप्ति के योग्य है जिसका नाम मोक्ष है उसको विद्वान् लोग सब काल में देखते हैं। वह सब में व्याप्त हो रहा है और उसमें देश काल और वस्तु का भेद नहीं है अर्थात् उस देश में हैं और उस देश में नहीं है तथा उस काल में था और उस काल में नहीं, उस वस्तु में है और उस वस्तु में नहीं है, इसी कारण से वह पद सब जगह में सबको प्राप्त होता है क्योंकि वह ब्रह्म सब ठिकाने परिपूर्ण है। उस पद की प्राप्ति से कोई भी प्राप्ति उत्तम नहीं है। इसलिए चारों वेद उसी की प्राप्ति कराने के लिए विशेष करके प्रतिपादन कर रहे हैं।

विद्या के विपरीत अविद्या नित्य में अनित्य, अमर्त्य में मर्त्य, अधर्म में धर्म, अन्याय में न्याय, दुःख में सुख, जड़ में चेतन खोजती है। एक तरह से यह विद्या का एकदम विरोधी ज्ञान है। अविद्या का एक दूसरा अर्थ भी है! अविद्या अर्थात् जो विद्या नहीं है, विद्या नहीं है तो फिर वह क्या है? तो कहा जाता है कि वह कर्म है।

वेद में कई मंत्रों में अविद्या का प्रयोग कर्म के अर्थ में ही किया गया है।

स्वामी शंकराचार्य ने भी अविद्या का अर्थ कर्म काण्ड किया है।

अब हम यजुर्वेद अध्याय 40 के आधार पर विद्या-अविद्या पर विचार करते हैं।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳरताः।। यजु. 40.12

स्वामी शंकराचार्य अपने ईशोवास्योपनिषद् के भाष्य में इस मंत्र को लिखने के पूर्व लिखते हैं, ये तु कर्मणिः कर्म निष्ठाः कर्म कुर्वन्तः एव जिजी विषव तेभ्यः इदम् उच्यते-उनके अनुसार यह मंत्र उन लोगों के लिए है जो लोग कर्म मार्गी हैं, कर्म में निष्ठा रखने वाले हैं जो कर्म करते हुए ही जीने के इच्छुक हैं। स्वामी शंकराचार्य के अनुसार मंत्र का भावार्थ इस प्रकार होगा। जो लोग केवल अविद्या (कर्म काण्ड) के अनुष्ठान में लगे रहते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो लोग केवल विद्या (देवतोपासना) में लगे रहते हैं वे उससे भी गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मंत्र का इस प्रकार किया है-(ये) जो मनुष्य (अविद्याम्) अनित्य में नित्य, अशुद्ध में शुद्ध, दुःख में सुख अनात्मा शरीरादि में आत्म बुद्धि अविद्या उसकी अर्थात् ज्ञानादि रहित परमेश्वर से भिन्न जड़ वस्तु की (उपासते) उपासना करते हैं। (अन्धम् तमः) दृष्टि के रोकने वाले अन्धकार और अत्यन्त अज्ञान को (प्र विशन्ति) प्राप्त होते हैं और (ये) जो अपने को आत्मा के पण्डित मानने वाले (विद्यायाम्) अर्थ और इसके सम्बन्ध के जानने मात्र अवैदिक आचरण (रताः) करते (ते) वे (उ) भी (ततः) उससे (भूय इव) अधिकतर (तमः) अज्ञान रूपी सागर में प्रवेश करते हैं।

स्वामी शंकराचार्य ने अविद्या का अर्थ देवतोपासना लिया है जबकि स्वामी दयानन्द में विद्या का अर्थ अपने आपको पण्डित मानने वाले, केवल वेद मंत्र के अर्थ को जानने वाले परन्तु आचरण में उससे विरूद्ध कार्य करने वाले व्यक्तियों को लिया है।

स्वामी शंकराचार्य ने विद्या का अर्थ विद्या से विपरीत लिया है वेद का मंत्र तो सभी के लिए है फिर स्वामी शंकराचार्य का यह कथन उचित नहीं है कि यह मंत्र केवल कर्मकाण्डि लोगों के लिए ही है।

मेरी दृष्टि से तो मंत्र में आये विद्या और अविद्या का अर्थ ज्ञान और कर्म है। मंत्र में कहा गया है कि जो लोग केवल अविद्या अर्थात् कर्म की उपासना करते हैं और बिना ज्ञान के केवल कर्म करते हैं वे निश्चित रूप से अंधकार में प्रवेश करते हैं। इसके विपरीत जो लोग केवल विद्या की उपासना (प्राप्ति कार्य के लिए) करते रहते हैं वे उनसे भी अन्धकार में प्रवेश करते हैं क्योंकि कर्म का तो कोई न कोई अच्छा बुरा फल होता है परन्तु कर्म रहित विद्या का कोई फल नहीं होता है।

इसलिए वे अविद्या (कर्म) में संलग्न लोगों से भी हीन होते हैं।

फिर अगले मंत्र में दोनों के भिन्न-भिन्न फल होने की बात कही है।

अन्य देवाहुर्विद्याया ऽअन्यदा-हुरविद्यायाः।

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।। यजु. 4013

इस मंत्र का अर्थ दोनों का समान ही है।

अर्थ-हे मनुष्यों। जो विद्वान् (नः) हमारे लिए (विचचक्षिरे) व्याख्यापूर्वक कहते थे (विद्यायाः) विद्या का (अन्यत्) अन्य ही कार्य वा फल (आहुः) कहते थे (अविद्यायाः) अविद्या का (अन्यत्) दूसरा फल (आहुः) कहते हैं। इस प्रकार उन (धीराणाम्) आत्मज्ञानी विद्वानों से (तत्) उस वचन को हम लोग (शुश्रुम) सुनते थे ऐसा जानो। (स्वामी दयानन्द)

विद्या या देवतोपासना से पृथक् फल कहा गया है और कर्म काण्ड से पृथक् फल कहा गया है। ऐसा ज्ञानी लोगों से सुना है जिन्होंने हमारे लिए इसकी व्याख्या की थी। स्वामी शंकराचार्य दोनों ने अविद्या और विद्या के अलग अलग फल माने हैं।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वे-दोभयꣳ सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायामृतमश्नुते।। यजु. 4014

अर्थ-(यः) जो विद्वान् (विद्याम्) विद्या (च) और उसके सम्बन्धी साधन-उपसाधनों को (अविद्याम्) अविद्या (च) और इसके उपयोगी साधन समूह की ओर (तत्) उस ध्यानगम्य कर्म (उभयम्) इन दोनों को (सह) साथ ही (वेद) जानता है वह (अविद्यया) शरीरादि जड़ पदार्थ समूह से किये पुरूषार्थ से मृत्यु दुःख के भय को (तीर्त्वा) उल्लंघन कर (विद्यया) आत्मा और शुद्ध अन्तः करण के संयोग में जो धर्म उस से उत्पन्न हुए यथार्थ दर्शन रूप विद्या से (अमृतम्) नाश रहित अपने स्वरूप वा परमात्मा को (अश्नुते) प्राप्त होता है।

इसी प्रकार स्वामी शंकराचार्य का भी मानना है कि जो व्यक्ति उपासना और कर्म को साथ साथ करने योग्य जानता है वह कर्म के द्वारा मृत्यु को पार करके उपासना के द्वारा अमृत को प्राप्त कर लेता है। यजुर्वेद का कहना है कि विद्या का कभी भी ह्रास नहीं होना चाहिए।

मा नः शꣳसो ऽअररूषो धूर्तिः प्रणङ्।

रक्षणो ब्रह्मणस्पते।। यजुर्वेद 3.30.

अर्थ-हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर। आपकी कृपा से (नः) हमारी वेद विद्या (मा प्रणङ्) कभी नष्ट न हो और जो (अररूषः) दानादि धर्म रहित पर धन ग्रहण करने वाले (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्तिः) हिंसा है उससे (नः) हम लोगों की निरन्तर (रक्ष) रक्षा कीजिए।

विद्वानों को भी विद्या के प्रचार प्रसार में भाग लेना चाहिए।

अग्ने व्रतपास्ते व्रतपाया तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनस्त्वय्यभूदियꣳसा मयि।

यथा यथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्ता-नुतपस्तपस्पति।। यजुर्वेद 5.40

अर्थ-(व्रतपाः) जैसे सत्य का पालन करने वाला विद्वान् हो वैसे (अग्ने) हे विशेष ज्ञानवान पुरूष। जो तेरा (व्रतपाः) सत्य विद्या गुणों का पालने वाला आचार्य (अभूत्) हुआ था वैसे मैं (ते) तेरा होऊँ (या) जो (तव) तेरी (ततः) विद्या आदि गुणों से व्याप्त होने वाली देह है (सा) वह (मयि) तेरे मित्र मेरे में भी हो (एषा) वह (त्वयि) मेरे मित्र तुझ में बुद्धि हो (या) जो (मम) मेरी (तनूः) विद्या की फैलावट (सा) वह (त्वयि) मेरे पढ़ाने वाले

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

आर्य समाज स्थापना दिवस मनाएं और ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों व सिद्धान्तों पर विचार करें

1. महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना करके भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और अज्ञान से मुक्त करके सत्य और पवित्रता की स्थापना की। पराधीन भारत की सुप्त आत्मा को स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नावस्था में लाने का सराहनीय कार्य किया। स्वराज्य शब्द की सर्वप्रथम उद्घोषणा करने वाले स्वामी दयानन्द ने कहा था कि कोई कितना भी करे जो स्वदेशी राज्य होता है, वही सर्वोपरि होता है। आर्य समाज श्रेष्ठ लोगों का संगठन है और श्रेष्ठ वे होते हैं जो विश्व को, मानवता को और मानव मूल्यों को समर्पित होते हैं।

2. आर्य समाज सब मनुष्यों एवं सब देशों के प्रति न्याय और स्त्री पुरूषों की समानता को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करता है। यह जन्मना जात-पात का खण्ड़न करता है और गुण, कर्म व योग्यता के आधार पर वर्ण व्यवस्था को मानता है। इस विभाजन से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं होता। आर्य कोई जाति नहीं है। आर्य श्रेष्ठ विचारों वाले व्यक्ति को कहते हैं। आज भी अगर वही वर्ण व्यवस्था लागू हो जाए तो राष्ट्र उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

3. स्वामी दयानन्द भारत को राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक रूप से एकसूत्र में बांधना चाहते थे। एक राष्ट्र का रूप देने के लिए उन्होंने भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराना चाहा। सामाजिक दृष्टि से देशवासियों को एक करने के लिए उन्होंने प्रचलित मतों के स्थान में वेद द्वारा प्रतिपादित धर्म को स्थान देने की कामना की थी। स्वामी दयानन्द को इन दोनों उद्देश्यों में सफलता मिली। समाज सुधार के क्षेत्र में आर्य समाज ने अद्भुत सेवा की। स्त्रियों की दुर्दशा के निवारण के लिए महर्षि दयानन्द ने बड़ी उदारता और वीरता के साथ कार्य किया।

4. आर्य समाज ने अपने स्थापना काल से ही सबसे अधिक कार्य शिक्षा के क्षेत्र में किया है। इस समय भारत में सरकार के पश्चात शिक्षा के क्षेत्र में दूसरा स्थान आर्य समाज एवं डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाओं का है। आर्य समाज ने न केवल स्कूल, कॉलेज ही खोले, अपितु गुरूकुलों की स्थापना कर प्राचीन शिक्षा पद्धति को भी नवजीवन प्रदान किया। शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज ने एकांगी कार्य नहीं किया। आर्य समाज ने नारी शिक्षा की ओर भी न केवल ध्यान ही दिया अपितु उसे प्राथमिकता प्रदान की। इसी के परिणामस्वरूप आज शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज की अग्रणी भूमिका है।

5. आर्य समाज की स्थापना करने के पश्चात महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के जो दस नियम बनाए, उनमें उन्होंने अपना लक्ष्य निर्धारित करते हुए छठे नियम में लिखा कि- संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। वेद में कहा गया है कि संसार को उन्नत करो। यह नियम ऐसा अद्भुत और अनोखा है जो संसार के किसी संगठन में नहीं पाया जाता। प्रत्येक समाज अपने समान विचार वाले लोगों को प्रमुखता प्रदान करता है। जैसे मुसलमान और ईसाई अपने-अपने सम्प्रदाय की स्थापना करके उसका विस्तार करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसके विपरीत वैदिक धर्म संसार के लिए है। संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। आर्य समाज किसी एक देश या जाति विशेष से सम्बन्धित नहीं हैं । एक आर्य के लिए आर्य समाज के सदस्य ही नहीं अपितु संसार के दूसरे व्यक्ति, व्यक्ति ही नहीं सम्पूर्ण प्राणीमात्र सहानुभूति, दया और प्रेम के पात्र हैं।

6. आर्य समाज की स्थापना करके महर्षि दयानन्द सरस्वती जी एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जहां पर किसी के साथ कोई भेदभाव न हो। जाति, मत, पन्थ और सम्प्रदाय की तरह कोई व्यवहार न करे। सभी समान विचार वाले होकर सबके कल्याण के लिए मिलकर कार्य करें। समान विचार वाले होकर राष्ट्र की उन्नति के लिए कार्य करें। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने द्वारा स्थापित समाज को आर्य समाज का नाम दिया। आर्य का अर्थ श्रेष्ठ होता है अर्थात् जिनके विचार शुद्ध, आचार शुद्ध, व्यवहार और खान-पान शुद्ध होता है वही व्यक्ति आर्य कहलाने का अधिकारी है। आर्य समाज व्यक्तियों के उस समूह का नाम है जहां पर आपस में कोई क्लेश, लड़ाई, झगड़ा नहीं है। सबके विचारों को सम्मान दिया जाता है। सबकी बातों पर अम्ल किया जाता है।

7. आर्य समाज के सिद्धान्त और नियम सार्वभौम हैं। आर्य समाज के नियम वेदों पर आधारित हैं। इन नियमों में किसी एक की उन्नति नहीं परन्तु सबकी उन्नति की कामना की जाती है। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के नौवें नियम में लिखा कि-प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का उद्देश्य सारे संसार का कल्याण करना था । वे किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं अपितु सर्वे भवन्तु सुखिन: की भावना को लेकर कार्य करते थे। यही कारण है कि आर्य समाज ने सभी क्षेत्रों में कार्य किया। आर्य समाज किसी के दबाव में नहीं आया और गलत का खुलकर विरोध किया। इसी कारण से आर्य समाज एक समाज सुधारक के रूप में सामने आया।

8. आर्य समाज श्रेष्ठ व्यक्तियों का समाज है। आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ, धर्मपरायण, सदाचारी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ। आर्य शब्द किसी नस्ल या जाति का बोधक नहीं है और न ही किसी देश विशेष के व्यक्तियों के लिए ही इसका प्रयोग होता है। जिस व्यक्ति के अन्दर अच्छे गुण हैं, अच्छे संस्कार हैं, अच्छे विचार है वही मनुष्य आर्य कहलाने का अधिकारी है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा स्थापित आर्य समाज नामक संस्था किसी मत-पन्थ और सम्प्रदाय पर आधारित नहीं है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने किसी व्यक्ति विशेष के नाम पर इस समाज की स्थापना नहीं की थी। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य विश्व भर को आर्य बनाना, सम्पूर्ण मानव जाति का उपकार करना अर्थात् लोगों की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना है। आर्य समाज की स्थापना के पीछे उनका लक्ष्य समाज में फैली बुराईयों और कुरीतियों को दूर करना था। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी जब अपने गुरू स्वामी विरजानन्द जी से शिक्षा ग्रहण करने के बाद कार्यक्षेत्र में उतरे तो समाज में अनेक प्रकार के पाखण्ड़ और अन्धविश्वास फैले हुए थे। स्त्री जाति की स्थिति दयनीय थी। नारियों को पैर की जुती समझकर चारदीवारी में कैद करके रखा जाता था। बाल विवाह की प्रथा होने के कारण दूध पीते बच्चों का विवाह करवा दिया जाता था। मूर्ति पूजा के कारण हमारे देश में अनेक प्रकार के पाखण्ड़ और अन्धविश्वास फैले हुए थे।

9. महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना इस उद्देश्य से की थी कि संसार भर में वैदिक धर्म का प्रचार करके मनुष्य मात्र को आर्य बनाया जाये। उद्देश्य जितना महान है उतना ही विशाल भी है और उसकी पूर्ति उससे भी कठिन प्रतीत होती है। कठिनाई के अनेक कारण हैं। उनमें सबसे बड़ा यह है कि आर्यत्व स्वयं एक कठिन वस्तु है, ईसाई उसे कहते हैं जो ईसाई पादरियों द्वारा बतलाए गए सिद्धान्तों को स्वीकार करता हो। मुसलमान उसे समझा जाता है जो हजरत मुहम्मद और कुरान पर ईमान रखे। इस दृष्टि से ईसाई अथवा मुसलमान को पहचानना बहुत आसान है परन्तु आर्य शब्द की व्याख्या इतनी सरल नहीं है। आर्य शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ। जिसके कर्म और विचार दोनों श्रेष्ठ हो वह आर्य कहलाता है। महर्षि दयानन्द ने अपने स्थापित किए हुए समाज का नामकरण न तो अपने नाम से किया और न ही किसी अन्य के नाम से । उन्होंने समाज का नाम आर्य समाज के नाम से रखा। इसकी यही सुन्दरता है कि महर्षि ने नामकरण द्वारा ही अपने अभिप्राय को सर्वथा स्पष्ट कर दिया। वह आर्य समाज को अन्य मत मतान्तरों की तरह कोई पन्थ या सम्प्रदाय नहीं बनाना चाहते थे और न ही ये चाहते थे कि केवल कुछ विशेष चिह्नों को धारण करने से कोई व्यक्ति धार्मिक समझा जा सके। वह धार्मिक तभी समझा जा सके जब उसके कर्म भी आर्यत्व के अनुसार हों।

आर्य समाज स्थापना दिवस 6 अप्रैल को आ रहा है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों के अधिकारियों से निवेदन है कि नव संवत्सर एवं आर्य समाज स्थापना दिवस धूमधाम के साथ मनाएं। इस अवसर पर युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के द्वारा स्थापित वैदिक सिद्धान्तों पर विचार करते हुए आर्य समाज की उन्नति के लिए कार्य करने का संकल्प लें।

प्रेम भारद्वाज
सम्पादक एवं सभा महामन्त्री

वैदिक धर्म–सनातन संस्कृति

ले.-श्री डा. आनन्द सुमन जी

अनेक युग बीत चुके हैं, अनेकों मजहब, मत बने बिगड़े हैं, अनेकों राष्ट्रों का तख्ता पलट्य है। बहुतों का काया-कल्प हो गया है किन्तु दो अरब वर्ष से वैदिक धर्म अपने सत्य जनकल्याणकारी स्वरूप को निरन्तर सूर्य की भान्ति प्रकाशित किए हुए है। इसी भावना को मुस्लिम कवि इकबाल ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

यूनान मिस्त्र रोमां,
सब मिट गए जहां से
बाकी अभी तलक है,
नामों निशां हमारा।
कोई बात है कि हस्ती,
मिटती नहीं हमारी।।
सदियों रहा है दुश्मन,
दौरे जहां हमारा।।

इकबाल की यह पंक्तियां वैदिक धर्म के सत्य स्वरूप, मानवीय सन्देश एवं स्वत: प्रमाण होने की पुष्टि करती हैं। इकबाल की यह विचारधारा भी बदल गई थी: वह भी पाकिस्तान के विभाजन के समय सम्प्रदाय की भावनाओं में बह गए थे। किन्तु तब भी वैदिक धर्म की सत्यता पर कोई चिन्ह नहीं लगा, वास्तव में यही विशेषता है हमारी संस्कृति की, कि हम आज तक नहीं मिटे निरन्तर आने वाले परिवर्तनों से हमारी सांस्कृतिक धरोहर वेद में कोई परिवर्तन नहीं आया। नहीं बदला हमारा वैदिक परिवेश।

वैदिक धर्म ही एक मात्र धर्म है जो सारे संसार को सत्य, मानवता, विज्ञान एवं विवेक के पथ की ओर प्रोत्साहित करता है, यह बात केवल लिखने कहने या पढ़ लेने की नहीं, संसार की हर कसौटी पर परखने के बाद ही यह लिखा जा रहा है। स्वयं मैंने इस्लामी वातावरण में आंखें खोलीं। जवानी की दहलीज पर आते-आते मैं कट्टर जुनून वादी इस्लामी बन गया। यह थी इस्लामी सम्प्रदाय की मतांधता-किन्तु जब मेरे सामने सत्य उजागर हुआ मुझे प्रकाश मिला तब मुझे मजबूर होकर वैदिक धर्म में आना पड़ा। मैंने अनुभव किया कि वैदिक धर्म में हमें पूरी स्वतन्त्रता है कि हम किसी भी प्रश्न को बुद्धि व विवेक से खोजें, केवल यह कहना कि यह कुरान में है क्योंकि मैं कह रहा हूं इसलिए यह सत्य है, यह बात नहीं वैदिक धर्म की महत्ता यह है कि हम अपनी बुद्धि लगाकर परखें जानें समझें इसी प्रेरणा का आधार है वेद-अर्थात् ज्ञान।

सृष्टि की उत्पत्ति के पश्चात् जिस पहले मानव ने धरती पर पग रखा उसके मस्तिष्क में जो पहला सत्य विचार आया वहीं से आरम्भ होता है वेद का सन्देश श्रुति के माध्यम से वेद का सन्देश चहुं और प्रसारित हुआ-डार्बिन का सिद्धान्त फैल ही गया कि पहले मानव नहीं था वह तो बन्दर की सन्तानों में से है। वेद ने सारा रहस्य समझाया उसे जिसने समझने का प्रयास किया। वेद ज्ञान फैला सूर्य की भान्ति सारी सृष्टि को अपने प्रकाश से प्रकाशित कर दिया, कुछ विसंगतियों ने जन्म लिया वेद के विचार सीमित हो गए जन्माधिकार वाद को मानने वाले घमण्डी बन बैठे, सामाजिक परिवेश भ्रष्ट हो गया। मानव समाज मिथ्या में धंस गया, एक व्यूह जो वेद ज्ञान को नहीं समझता था वह धीरे-धीरे छा गया, शंकराचार्य ने भी वेद की ओर जाने का साहस नहीं दिखाया ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त ही लक्ष्मण रेखा बना दी गई अनेक ऋषि मुनि हुए किन्तु किसी ने भी प्रस्थान त्रयी को छोड़ कर वेद त्रयी की ओर बढ़ने का साहस नहीं दिखाया वेदान्त तक ही सीमित रह गया। समाज में 18वीं शताब्दी आई, अंग्रेजों का सूर्य उदय था। उनकी आज्ञा के बिना कोई चूं तक न करता था। किन्तु एक दीवाने ने साहस दिखाया उसने ज्ञान के अथाह सागर में गोते लगाये पुराने पत्थरों को छोड़कर वह मणि खोज लाया वेद। दयानन्द को वेद क्या मिला समझो सारा संसार ही मिल गया ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त की श्रृंखला टूट गई आज बड़े गर्व से हम कहते हैं ब्रह्मा से दयानन्द व दयानन्द से आर्य समाज पर्यन्त वेद की विचारधारा संसार का मार्ग दर्शन करती रहेगी।

वेद के प्रकाश से हमें जो मिला वह सब कुछ है सर्वस्व है, उसी में सबका हित है मानवता विज्ञान व विवेक का त्रिसूत्र, समाज ने अंगड़ाई ली वेद ज्ञान फैला और अब आवश्यकता है कि हम सब मिलकर ''वेद ज्ञान को समझें दयानन्द ने कहा ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'' इस विचार को सारे संसार में फैलाना है-सत्य विद्याओं के मूल वेद को समझना है, तब ही मानव समाज निर्भय रह सकेगा तभी होगी विश्व शान्ति मानव एकता, नारे लगाने से सम्मेलन करने से विश्व शान्त नहीं रह सकेगा। वेद के मर्म को स्वयं समझना तदनुरूप आचरण में लाना व अन्यों तक भी वेद सन्देश पहुंचाना होगा। सारे संसार में वेद की पताका ही फहराओ तभी होगा मानवता का कल्याण, तभी बुद्धि पर छाई कालिमा मिटेगी जो भयावह वातावरण सबको शंका में डाले है, भयभीत किये है उस कुरीति को ताड़ना होगा ज्ञान की खोज ही मानव जीवन का मुख्य ध्येय है, हमें सब ओर यह सन्देश प्रसारित करना है कि अन्धकार मय मार्ग पर न चलकर हम सब प्रकाश युक्त बुद्धि को प्रशस्त करने वाले वेद मार्ग को ही अपनायें मानवों तक वेद का सन्देश पहुंचाना आज के आर्य सभासदों का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। बिना विचार के कहीं हम प्रस्थान त्रयी में फंस जायें-कही फिर हमें अन्धकार की गुफा में धंस जाना पड़े।

जागों, उठो समझो समझाओ, वेद का सन्देश जन-जन तक पहुंचाओ आज संसार को वैदिक धर्म की आवश्यकता है। वैदिक जीवन पद्धति के बिना सब अधूरा ही रह जायेगा। अत: कर्मशील बनो। यही आर्य समाज का सन्देश है।

पृष्ठ 8 का शेष-आर्य समाज अजनाला.....

आयोजन किया गया। इस अवसर पर आर्य समाज श्रद्धानंद बाजार अमृतसर, आर्य समाज लक्ष्मणसर अमृतसर, आर्य समाज फतेहगढ़ चूडिया, आर्य समाज हरिपुरा अमृतसर, आर्य समाज रमदास जिला अमृतसर, महिला आर्य सभा अमृतसर एवं भिन्न भिन्न सामाजिक संस्थानों ने भाग लिया। इस अवसर पर प्रधाना प्रमोद आर्य, माता सुदेश, कुलभूषण आर्य, पंडित मुकेश शास्त्री, श्री विजय आढती, अशोक शर्मा, नीलम अंजू, अमित कुन्दरा, सन्त्री चोपड़ा, वरिन्द्र सचदेवा, श्रीमती रमिता, श्री सुमेश जी, उपस्थित थे। तीनों दिन आर्य समाज में ऋषि लंगर का प्रबन्ध भी किया गया था। यह बहुत ही सफल आयोजन था।

-मुकेश शास्त्री अजनाला

पृष्ठ 8 का शेष-आर्य समाज राजपुरा...

क्षेत्रों में आर्य समाज के प्रचार की योजनाएं बनाएं। वर्तमान में आर्य समाज के सार्वभौमिक सिद्धान्तों एवं नियमों से लोगों को तथा युवा पीढ़ी को जागरूक करने के अति आवश्यकता है। अगर इस योजना के अनुसार आर्य समाज के कार्य को आगे बढ़ाया जाता है कि हमें महर्षि के ऋण से उऋण होना है तथा समाज का कल्याण करना है तो फिर हमें महर्षि दयानन्द का जन्मदिवस और बोधोत्सव दोनों ही उत्साहपूर्वक मनाने चाहिए और अधिक से अधिक संख्या में लोगों को आर्य समाज के साथ जोड़ना चाहिए। इसके पश्चात बहिन अंजली आर्या जी के मधुरभजन हुये जिसे आए हुये लोगों ने सराहा।

अन्त में आर्य समाज के प्रधान श्री विजय आर्या जी ने सभी का धन्यवाद करते हुये कहा कि परमपिता परमेश्वर की अपार कृपा से यह ऋषि बोध उत्सव का सफल आयोजन हो पाया। उन्होंने विशेष रूप से आर्य समाज के विद्वान पुरोहित ब्रह्मदत्त शास्त्री जी का धन्यवाद करते हुये कहा कि उनके अनथक प्रयास से ही इस कार्यक्रम का सफल आयोजन किया गया। इस अवसर पर आर्य समाज के सभी पदाधिकारी एवं सदस्यों का कार्य बहुत ही सराहनीय था। स्त्री आर्य समाज की प्रधाना श्रीमती सुषमा सेतिया जी एवं उनके सहयोगियों ने भी इस उत्सव को सफल बनाने में अपना भरपूरा सहयोग दिया।

इस अवसर पर राजपुरा के विधायक हरदयाल सिंह कम्बोज, सरदार चरणजीत सिंह नामधारी, तरुण खुराना, प्रवीण छावड़ा, जगदीश जग्गा, आर्य समाज के संरक्षक अशोक आर्य, चन्द्र प्रकाश वर्मा, विद्या रतन आर्य, आर्य समाज के प्रधान श्री विजय आर्य मुनि, मंत्री नीरज आर्या, संजय आर्य, नंद किशोर आर्य, बहिन सुमन चावला, सुरेश आर्य, ओम प्रकाश चावला, सुरेन्द्र विशेष रूप से उपस्थित थे। इसके साथ ही आर्य समाज पटियाला, आर्य समाज राजपुरा, आर्य समाज समाना, आर्य समाज नाभा, आर्य समाज मंडी गोविन्दगढ़ के सदस्य एवं पदाधिकारी भी इस समारोह में उपस्थित थे। अंत में ऋषि लंगर वितरित किया गया।

विजय आर्य (मुनि)
प्रधान आर्य समाज राजपुरा टाउन

एषणातीत साधक का स्वरूप

ले.-श्री पं. जगदीश राम आर्य

हमारे वैदिक साहित्य में मान्य ऋषियों मुनियों और शास्त्रकारों ने मानव की इन तीनों एषणाओं को ही मानव जीवन के समूचे दुखों का मूलाधार माना है। अर्थात् वित्तेषणा, पुत्रेषणा और लोकेषणा एषणा का अर्थ है इच्छा उपरोक्त तीनों एषणाओं का स्वरूप इस प्रकार शास्त्रकारों ने माना है।

वित्तेषणा का अर्थ है। धन की लालसा, तीव्र इच्छा और धन के साथ परिबद्धता। धन उन सभी वस्तुओं के समूह को कहते हैं। जो हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक और अनिवार्य मानी जाती है।

पुत्रेषणा का अर्थ यह है। सन्तान सम्बन्धी लालसा व तीव्र इच्छा अथवा सन्तान के साथ आसक्ति पूर्ण परिबद्धता।

लोकेषणा का अभिप्राय है। समाज के अन्य मनुष्यों द्वारा अपनी प्रशंसा व सन्मान की तीव्र आकांक्षा से परिबद्ध होना।

यदि इन तीनों इच्छाओं का प्रयोग हम शास्त्र मर्यादाओं के अन्तर्गत करते हैं। तो यही तीनों एषणाएं हमारे लिए पूर्ण रूपेण सुखदाई सिद्ध हो जाती हैं। जिस प्रकार हमारी भोजन करने की इच्छा हमारे लिए अनिवार्य है और भोजन के बिना हम कदापि जीवित नहीं रह सकते। पर यदि हम भोजन भी शास्त्र मर्यादा के विपरीत ही करते हैं तो वही भोजन हमारे शारीरिक दु:खों का कारण बन जाता है। यथा भगवद्गीता के अनुसार युक्ताहार ही हमारे लिए पूर्ण सुखदाई बन सकता है। सारांश यही है कि यदि हम अपनी तीनों एषणाओं को शास्त्र मर्यादा के अन्तर्गत नहीं रखते तो यही एषणायें हमारे जीवन में पूर्ण दु:खदाई बन जाती हैं।

अब इन तीनों एषणाओं पर विस्तार से और गम्भीरता पूर्वक विचार करते हैं।

''वित्तेषणा'' धनोपार्जन की इच्छा ऐसी नहीं है। जिसकी हम उपेक्षा कर सकें। इसके अभाव में हमारा जीवन निर्वाह कदापि नहीं चल सकता। यदि हम धन की आकांक्षा अपने जीवन की रक्षा तथा अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए ही करते हैं और धन को केवल मात्र धर्मानुसार मर्यादित रीति से ही अर्जित करते हैं। तो हमारी यह वित्तेषणा हमारे शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए और सभी प्रकाश के सुखों के लिए उनका दृढ़तम आधार बन सकती है। किन्तु जब हमारे धनोपार्जन का उद्देश्य केवल हमारे भोग्य जीवन को ही समुन्नत करता है और जब हम अर्जित धन की भी शास्त्र मर्यादाओं का अतिक्रमण करके ही इसका उपार्जन करते हैं। तभी हमारी यह वितेषणा दूषित होकर हमारे दु:खों और क्लेशों का कारण बन जाती है।

अर्थोपलब्धि हमारे आर्थिक जीवन का एक अभिन्न अंग है। यदि हम धनोपार्जन अर्थशात्र के विशुद्ध सिद्धान्तों के अनुसार ही करते हैं तो हमारा यह धन का उपार्जन एक विशुद्ध यज्ञ का रूप ही होगा। और हमारे इस यज्ञ से सभी सम्बन्धित पक्षों का कल्याण ही होगा। कल्पना कीजिए कि हम किसी ऐसी वस्तु का निर्माण कार्य करते हैं। और अपनी निर्मित वस्तु की उपयोगिता का पूरा-2 ध्यान रखते हैं और उसमें अर्थ शास्त्र के आदेशानुसार सत्यम्, शिवम्, और सुन्दरम् गुणों का पूरा-2 समावेश करते हैं। तो तभी हमारा यह निर्माण कार्य याज्ञिक कर्म बन सकता है और ऐसी स्थिति में हमारी निर्मित वस्तु के उपभोगताओं की तुष्टि भी उत्तरोत्तर बढ़ती जावेगी और सभी उपभोगता उस वस्तु से लाभान्वित होते रहेंगे: ऐसी स्थिति में हमारी यह वित्तेषणा हमारे दु:ख की अपेक्षा सुख का कारण ही बनेगी। पर जब हम अपने निर्माण कार्य को केवल धनोपार्जन की भावना से ही करेंगे। तथा वस्तु की उपयोगिता का ध्यान नहीं रखेंगे। और उसमें सत्यम्, शिवम्, सुदरम् का समावेश नहीं करेंगे और इसके परिणाम स्वरूप उपभोगताओं की तृप्ति न होकर उसकी खप्त और मांग में कमी होने पर वह कार्य समाप्त भी हो सकता है जो हमारी और उपभोगताओं की आर्थिक हानि का कारण भी बन सकता है। प्रत्येक निर्माण कार्य में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के गुणों का समावेश अत्यावश्यक हुआ करता है। अर्थात् हमारी निर्मित वस्तु हमारी अभिव्यक्तियों और घोषणाओं के ही अनुरूप हो तथा वह वस्तु उपभोगताओं के लिए पूर्ण उपयोगी और हितकर हो। तथा लाभप्रद भी हो। हमारे निर्मित वस्तु में उसके गुणों और उसकी उपयोगिता के आधार पर आकर्षण भी हो। तभी उस वस्तु में सत्यम, शिवम् और सुन्दरम् की विद्यमानता मानी जावेगी।

स्पष्ट है कि अपने आर्थिक जीवन में धनोपार्जन के कार्य में यदि हमारी मुख्य भावना अपनी निर्मित और विक्रय वस्तुओं के उपभोगताओं के हितों और उनकी सुविधाओं की अपेक्षा और अवहेलना करके केवल अपने अर्थ-लाभ को ही अधिमान देते हैं तो ऐसी स्थिति में हमारी यह वित्तेषणा विकृत और दोषपूर्ण मानी जावेगी। और हमारा ऐसा व्यवहार हमारी आर्थिक लोलुप्ताता का ही परिचायक माना जावेगी। जो हमारे दु:खों-कलेशों का ही कारण बनेगा। यह वित्तेषणा का अर्जित और विशुद्ध स्वरूप है। इसी से बचना हमारा परम कर्त्तव्य है।

वित्तेषणा के संदर्भ में एक विचारणीय प्रश्न यह है कि हमारे आर्थिक जीवन में हमारे उपार्जित धन का प्रयोग हमारे उत्तराधिकारियों के द्वारा कैसा होता है। अर्थात् यह धन भोग्य जीवन में अथवा याज्ञिक कर्मों में प्रयुक्त होता है।

धन का सर्व श्रेष्ठ प्रयोग यही माना जाता है कि इसका प्रयोग अपने याज्ञिक कार्यों और विकास के लिए ही किया जावे शास्त्र वचन भी यही है। ''धनात् धर्मम् तत: सुखम'' अर्थात् धन का प्रयोग धर्म में ही सुखदाई हुआ करता है। भोगों का अवश्यम्भावी परिणाम रोगों के रूप में मिलता है।

''पुत्रेषणा'' इसका अर्थ यही है। सन्तान की लालसा तथा तीव्र इच्छा से बद्ध होना। यही पुत्रेषणा का स्वरूप है।

प्रत्येक गृहस्थी का अपने पितृ ऋण से उऋण होना उसका एक अनिवार्य कर्त्तव्य माना गया है। अत: सन्तानोत्पत्ती गृहस्थी का एक धार्मिक और अनिवार्य कृत्य माना जाता है। पर इस सदर्भ में यही विचारणीय और महत्वपूर्ण बात भी है कि गृहस्थी जैसी भी अच्छी या बुरी सन्तान उत्पन्न करे। वह इस को पितृ ऋण से उऋण बना देगी? और क्या इसका ऐसा कृत्य धर्मानुसार और प्रशंसनीय होगा? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि गृहस्थी को शिष्ट और सर्व गुण सम्पन्न सन्तान का निर्माण करना है उसका प्रसंशनीय व श्रेष्ठ कृत्य माना जा सकता है। क्योंकि शिष्ट और सदाचारी तथा सर्व गुण सम्पन्न सन्तान ही समूचे मानव समाज और उसके अपने लिये कल्याणकारक तथा उपयोगी सिद्ध हो सकती है। निर्गुण और दुराचारी, भी सुखदाई और कल्याणप्रद सिद्ध नहीं हुआ करती। इसके लिए वेद वचन भी यही आज्ञा देता है। ''अस्मान प्रजया पशुभि: ब्रह्म वर्चसी'' अर्थात् हमारी सन्तान और हमारे पशु महान् तेजस्वी और गुण सम्पन्न हों। इसी संदर्भ में एक संस्कृत के कवि का यह वचन अत्यन्त सार्थक सिद्ध होता है। यथा...माता शत्रु, पिता वैरी येन वालो न पाठिता। न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये बको यथा। अर्थात् वह माता-पिता अपनी सन्तान के शत्रु और वैरी होते हैं। जो अपनी सन्तान को विद्या के माध्यम से सर्व गुण सम्पन्न नहीं बनाते। उनकी सन्तान शिक्षित और शिष्ट समाज में शोभा और सम्मान को प्राप्त नहीं कर सकती। जिस प्रकार हंसों की पंक्ति में बगुला शोभित नहीं हो सकता। अत: प्रत्येक गृहस्थी का यही धर्म है कि वह अपनी सन्तानों को यथा सामर्थ्य यथा सम्भव अधिकाधिक सुशिक्षित और गुण सम्पन्न बनावे। यही उसकी पुत्रेषणा का विशुद्ध स्वरूप है। सुशिक्षा का अर्थ केवल अक्षर बोध कदापि नहीं है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण ज्ञान और उनकी पूर्ति में दक्षता सम्पन्न होना ही है।

किन्तु यदि किसी गृहस्थी की सन्तान दुर्गुण सम्पन्न और दुराचारी है तो उसका यह कृत्य अधार्मिक और अशोभनीय माना जावेगा। जो गृहस्थी अपनी सन्तान को मोह और ममता के वशीभूत होकर शिष्टाचारी और यथेष्ठ गुण सम्पन्न नहीं बनाता तो उसका ऐसा कृत्य उसकी पुत्रेषणा के विकृत स्वरूप को ही सिद्ध करने वाला होगा। और जो गृहस्थी मोह (अज्ञान) के वशीभूत होकर अपनी

(शेष पृष्ठ 7 पर)

देश के कुछ वीर क्रान्तिकारियों के अन्तिम समय के दृश्य

-ले० पं० खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड सन्ज १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दो तल्ला) कोलकत्ता-700007

यह लेख मैंने ''क्रान्ति के अग्रदूत'' शीर्षक पुस्तक से उद्धृत किया है, जिसके लेखक आचार्य भगवान देव जी ''चैतन्य'' हैं। इस लेख में कुछ वीर क्रान्तिकारियों के अन्तिम समय के दृश्यों का वर्णन है जिन्होंने फाँसी पर लटकने से पहले या मृत्यु के पहले प्रकट किये हैं। यह लेख आज के नवयुवकों के लिये बहुत ही प्रेरणादायक व शिक्षाप्रद है। वे क्रान्तिकारी जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपना पूरा जीवन न्यौछावर किया है, वे इस भाँति हैं:

१. चन्द्रशेखर आजाद-भारत मां के इस लाड़ले का जन्म मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले के एक छोटे से गाँव भावरा में 23 जुलाई 1906 में कान्य कुब्ज ब्राह्मण पण्डित सीताराम तथा जगरानी देवी दम्पति के घर हुआ। इस महान् क्रान्तिकारी ने यह प्रण कर रखा था कि मैं पुलिस की गोली से नहीं मरूँगा। जरूरत हुई तो मैं स्वयं को गोली मार कर मृत्यु को प्राप्त होऊँगा। उसका कहना था कि मेरे पिस्तौल में बारह गोलियाँ हैं। ग्यारह गोली दुश्मन के लिए और एक गोली मेरे लिए है। यही उस वीर ने कर दिखाया।

अन्तिम समय में आजाद एक व्यापारी से मिलने के लिए इलाहाबाद गये। यह मुलाकात अल्फ्रेड पार्क में होने वाली थी। दल के अपने ही एक साथी वीर भद्र तिवाड़ी ने इसकी सूचना पुलिस को दे दी। सूचना मिलते ही पुलिस पार्क में पहुँच गई। आजाद को ज्यों ही इस बात की भनक लगी। उन्होंने सब से पहले इस व्यापारी को वहाँ से सुरक्षित बाहर निकाला और स्वयं पुलिस का मुकाबला करने के लिए तैयार हो गया। यह थी आजाद की मानवता, पहने उसने व्यापारी को सुरक्षित बाहर निकाला। बहुत से पुलिस वाले आजाद के अचूक निशाने के शिकार हुए। पुलिस वाले उन्हें जीवित पकड़ना चाहते थे, मगर आजाद जीवित न पकड़े जाने की कसम खाये हुई थी अत: जब पिस्तौल में अन्तिम गोली बची तो उन्होंने उसे अपनी ही कनपटी पर दाग दिया। इस प्रकार यह अद्भुत क्रान्तिकारी 27 फरवरी 1931 को प्रात: साढ़े दस बजे वीर गति को प्राप्त हो गया।

२. सरदार भगतसिंह-सरदार भगत सिंह को देशभक्ति विरासत में मिली थी। उनके दादा अर्जुन सिंह स्वयं भी एक कट्टर देशभक्त थे। अर्जुन सिंह के तीन पुत्र हुए। अजीत सिंह, किशन सिंह, और स्वर्ण सिंह थे। तीनों ही देशभक्त व क्रान्तिकारी थे। भगत सिंह का जन्म 28 सितम्बर 1907 में पिता किशन सिंह माता विद्यावती के घर हुआ था। अर्जुन सिंह ने भगत सिंह का यज्ञोपवीत संस्कार सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान तथा अन्तरिक्ष में प्रथम भारतीय के रूप में जाने वाले राकेश शर्मा के दादा तर्क वाचस्पति लोकनाथ जी द्वारा कराया गया था। भगत सिंह जन्म जात क्रान्तिकारी थे। भगत सिंह ने अनेकों क्रान्तिकारी कार्य किये। जिनमें 1925 में रामप्रसाद बिस्मिल आदि क्रान्तकारियों के साथ काकोरी काण्ड, लाला लाजपत राय के हत्यारे साण्डर्स को 17 दिसम्बर 1928 को मारना मुख्य हैं और उनका सब से अधिक उल्लेखनीय कार्य बटुकेश्वर दत्त के साथ असेम्बली हाऊस में बम फेंकना था जिससे उनकी साथी राजगुरू और सुखदेव के साथ 24 मार्च 1931 को फाँसी देने का निर्णय किया गया। परन्तु जनाक्रोश और आन्दोलन के भय से 23 मार्च की रात को सायं सात बजकर पैंतीस मिनट पर लाहौर की जेल में फाँसी पर लटका दिया गया और चुपचाप उनके शवों का संस्कार कर दिया गया। परन्तु क्रान्तिकारी कभी नहीं मरते। वे आज भी हर भारतीय के दिल में कृतज्ञता और श्रद्धा के भाव लिए जीवित हैं।

३. पं० राम प्रसाद बिस्मिल-अनुपम क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म शाहजहाँ पुर (उत्तर प्रदेश) में श्री मुरलीधर जी के घर पर सम्वत् 1954 में हुआ। आर्य समाज इनके घर के पास ही था तथा वहाँ के वैदिक विद्वान मुंशी इन्द्रजीत से प्रेम होने से बिस्मिल आर्य समाज से जुड़ गये। मुन्शी जी ने बिस्मिल को एक सत्यार्थ प्रकाश दे दिया जिसके पढ़ने से बिस्मिल का जीवन ही बदल गया और उनमें क्रान्तिकारी भाव भी सत्यार्थ प्रकाश के पढ़ने से आये। बिस्मिल आठवीं कक्षा में पढ़ते थे तब उनका सम्पर्क स्वामी सोमदेव जी से हुआ। वे पक्के आर्य समाजी और पक्के देशभक्त थे।

उनके सम्पर्क में आने से बिस्मिल और भी पक्के आर्य समाजी व देश भक्त बन गये। उन्होंने अपने जीवन में अपने क्रान्तिकारी कार्यों को करने के लिए रूपयों के अभाव को मिटाने के लिए 9 अगस्त 1925 में अपने कुछ साथियों के साथ काकोरी स्टेशन पर रेलगाड़ी में जा रहे सरकारी कोष को लूट कर एक उल्लेखनीय कार्य किया। उनका नित्य का जीवन बहुत ही वेदानुकूल व संयमी था। उनके मृत्यु दिवस के कार्यक्रम से स्पष्ट ज्ञात होता है।

बिस्मिल जी का जेल का जीवन किसी सन्त, महात्मा से कम नहीं था। वे सर्दी गर्मी बरसात में प्रात: तीन बजे उठकर सन्ध्या, हवन करते थे। उनकी अन्तिम दिन तक यही दिनचर्या बनी रही। जिस दिन 19 दिसम्बर 1927 को उन्हें फाँसी दी जाने वाली थी, उस दिन भी वे ठीक ब्रह्म मुहूर्त्त में उठे, आसन, व्यायाम व स्नानादि करके सन्ध्या हवन किया और फिर स्तुति प्रार्थनोपासना करके आठों मन्त्रों का पाठ करते हुए हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे को अपने गले में डालकर मोक्ष पथ के राही बने।

४. अशफाक उल्ला खाँ-अशफाक उल्ला खाँ का जन्म 22 अक्तूबर सन् 1900 में शाहजहाँपुर में पिता मोहम्मद शफीक खाँ व माता श्रीमती मजहर उल निसा बेगम के घर हुआ। आपका सच्चा मित्र राम प्रसाद बिस्मिल था। उसके सम्पर्क में आकर अशफाक भी असाधारण क्रान्तिकारी देन और काकोरी काण्ड में अशफाक, बिस्मिल के साथ और 6 अप्रैल 1927 को उसे रामप्रसाद बिस्मिल राजेन्द्र लाहड़ी तथा ठाकुर रोशन सिंह सहित फाँसी की सज़ा सुनाई गई।

न्यायालय में अशफाक ने निर्भीकता के साथ कहा ''जजों में हमें निर्दयी बर्बर, डाकु, हत्यारे, और मानवता के लिए कलंक आदि कई विशेषणों से याद किया है, किन्तु हम पूछते हैं, क्या इन जजों ने जलियां वाला बाग में डायर की गोली चलते देखा अथवा सुना है क्या? उसने निशस्त्र स्त्री, पुरुषों, बाल, वृद्ध सब पर गोलियाँ नहीं चलाई थी? कितने जजों ने इन विशेषणों से उन्हें विभूषित किया, तो फिर क्या यह उपहास हमारे साथ ही करना है। हालांकि सरकार ने उसे सरकारी गवाह बनाने के लिए बहुत से लालच दिये मगर वे टस से मस नहीं हुए। अन्तत: उसे समझाने के लिए उसकी माँ को भेजा। मां ने भरी हुई आँखों से कहा कि यदि तू मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं तुझे अपना दूध नहीं बखशूंगी। अशफाक में बड़ी दृढ़ता से कहा ''अम्मी यदि आप नहीं बखशेंगी तो आपकी मर्जी मगर भारत माता अपना दूध जरूर बख्श देगी। अपनी दीदी को उसने लिखा, दीदी! मैं मरने जा रहा हूँ। वस्तुत: अमरत्व प्राप्त करने जा रहा हूँ। आप मुझे भूलेंगी नहीं। अन्तत: 19 दिसम्बर 1927 का दिन आया। जिस दिन भारत माँ के इस रणवांकुरे को आजादी की दुल्हन को व्याहने के लिए फाँसी की घोड़ी पर सवार होना था। उस दिन उसने उजले वस्त्र और सुन्दर जूते पहने, बढ़े हुए बाल बनवाएं, उबटन लगाकर स्नान किया और सज-धज कर फाँसी की रस्सी को सम्बोधित करते हुए उसने कहा ''मेरी महबूबा मुझे मालूम था कि विवाह के लिए तू मेरा इन्तजार कर रही है। लो मैं आ गया और हम दोनों अब इस तरह मिलेगे कि कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा।

५. उधम सिंह-क्रान्तिकारी वीर सरदार उधम सिंह का जन्म 26 दिसम्बर 1899 को पटियाला जिले के सुनाम गाँव पिता चोहड़ सिंह माता नरायणी देवी के घर हुआ। इनके पिता जी किसी बिमारी से इनके बचपन में ही गुजर गये। तब उधम सिंह अपने बड़े भाई साधु सिंह के साथ अनाथालय में रहे। अनाथालय में रहते हुए उधम सिंह लकड़ी का काम सीखते रहे और पढ़ाई भी करते रहे। 13 अप्रैल 1919 को होने वाला जलियांवाला काण्ड को उधम सिंह ने अपने आँखों से देखा था और तभी यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस हत्याकाण्ड को करने वाले जनरल डायर और इसकी प्रेरणा देने वाले पंजाब के गवर्नर माईकेल ओडवार को मार कर बदला लूँगा। बीस वर्षों के अनेक प्रयासों के बाद उधम सिंह लन्दन पहुँचे और महर्षि दयानन्द के अनन्य शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित ''इण्डिया हाउस'' में अपना डेरा डाला। इण्डिया हाउस उन दिनों क्रान्तिकारियों का एक बहुत बड़ा गढ़ था। वही उधम सिंह को सहसा एक दिन यह समाचार पढ़ने को मिला कि 13 मार्च 1940 को इग्लैण्ड के केक्सटनन हाल में एक गोष्टी का आयोजन है। इसका मुख्य वक्ता पापी माईकल ओडवार है।

पृष्ठ 2 का शेष-यजुर्वेद में विद्या और अविद्या

तुझ में हो। (इयम्) यह (मयि) मेरे शिष्य मुझमें बुद्धि हो (व्रतपते) हे आचरणों से पालन करने वाले। जैसे सत्य गुण, सत्य उपदेश का रक्षक विद्वान् होता है वैसे मैं और तू (यथायथम्) यथा युक्त मित्र होकर (व्रतानि) सत्य आचरण का बर्ताव वर्त्ते। हे मित्र। जैसे (तव) तेरा (दीक्षापतिः) यथोक्त उपदेश का पालन करने वाला तेरे लिए (दीक्षाम्) सत्य का उपदेश (अमंस्त) करना जान रहा है वैसे मेरा मेरे लिए (अनु) जाने। जैसे तेरा (तपस्पतिः) अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला आचार्य तेरे लिए (तपः) पहले क्लेश और पीछे सुख देने वाले ब्रह्मचर्य को जान रहा है वैसे मेरा अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालने वाला आचार्य मेरे लिए जाने।

भावार्थ-जैसे पहले विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगों को भी होना चाहिए। मनुष्य के लिए यज्ञ को सिद्ध करने वाली विद्या का भी नित्य सेवन करना चाहिए। इस विषय पर यजुर्वेद का कथन है-

यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिꣳसीः पृथिव्या संभव अयꣳ हि त्वा स्वधिति स्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। अतस्त्व देववनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्त्रवल्शाविवयꣳरूहेम। यजु. 543

अर्थ-हे विद्वान्। जैसे मैं सूर्य के सामने से होकर (द्याम्) उसके प्रकाश को दृष्टि गोचर नहीं करता हूँ वैसे तू भी उसको (मा, लेखीः) दृष्टिगोचर मत कर। जैसे मैं (अन्तरिक्षम्) यथार्थ पदार्थों के अवकाश को नहीं बिगाड़ता हूँ वैसे तू भी उसको (मा, हिंसी) मत बिगाड़। जैसे मैं (पृथिव्या) पृथ्वी के साथ होता हूँ वैसे तू भी उसके साथ (सम् भव) हो। (हि) जिस कारण जैसे (तेतिजानः) अत्यन्त पैना (स्वधितिः) वज्र शत्रुओं को नाश करके ऐश्वर्य को देता है (अतः) इस कारण (अयम्) यह (त्वा) तुझे (महते) अत्यन्त श्रेष्ठ (सौभाग्य) सौभाग्यपन के लिए सम्पन्न करे और भी पदार्थ जैसे ऐश्वर्य को (प्रणिनाय) प्राप्त करते हैं वैसे तुझे ऐश्वर्य पहुंचावे। हे (देव) आनन्द युक्त (वनस्पते) वनों की रक्षा करने वाले विद्वान् जैसे (शतवल्शः) सैकड़ों अंकुरों वाला पेड़ फलता है वैसे तू भी उक्त प्रशंसनीय सौभाग्यपन से (वि, रोह) अच्छी तरह फल और जैसे (सहस्त्रवल्शाः) हजारों अंकुरों वाला पेड़ फले वैसे हम लोग भी सौभाग्यपन से फले फूले।

भावार्थ-इस संसार में किसी भी मनुष्य को विद्या के प्रकाश का अभ्यास अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कार्यों की उन्नति को न छोड़ना चाहिए।

इसी प्रकार यजुर्वेद में और भी कई मंत्र हैं जो हमें विद्या प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं परन्तु अब विषय आगे विस्तार न देकर यहीं विराम देते हैं।

आर्य समाज स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में विशेष कार्यक्रम

नव विक्रमी सम्वत् 2076 के शुभारम्भ एवं आर्य समाज स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में जिला आर्य सभा लुधियाना के तत्वावधान में सभी आर्य समाजों द्वारा सम्मिलित कार्यक्रम आर्य सी. सै. स्कूल मालेरकोटला हाउस शाखा के सामने दयानन्द मैडीकल कालेज सिविल लाईन्स लुधियाना में 7 अप्रैल 2019 रविवार को सांय साढ़े तीन बजे से 6.00 बजे तक आयोजित किया जा रहा है। आप सब सादर आमंत्रित हैं।

राजेश शर्मा प्रधाना

विजय सरीन महामंत्री

पुरोहित की आवश्यकता

आर्य समाज रमेश नगर करनाल के लिए एक सुयोग्य पुरोहित की आवश्यकता है। पुरोहित सभी संस्कारों को वैदिक रीति से करने की योग्यता रखता हो। दक्षिणा योग्यतानुसार दी जाएगी। आर्य समाज में ही आवास की निःशुल्क व्यवस्था होगी। इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें।

सम्पर्क सूत्रः यशपाल भाटिया-9034860417

पृष्ठ 5 का शेष-एषणातीत साधक का स्वरूप

सन्तानों की भोग्य कामनाओं की पूर्ति में तो उदारतापूर्वक तत्परता से सहायक बने रहते हैं। परन्तु उन्हें शिष्टाचारी और गुण सम्पन्न बनाने में पूरी तत्परता से अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करते। वह गृहस्थी भी अपनी पुत्रेषणा का दुरूपयोग रूपी पाप कर्म ही करते हैं।

''लोकेषणा'' इसका अर्थ है कि दूसरों के द्वारा अपनी प्रशंसक और सन्मान की आकांक्षा रखना। साधारण अवस्था में किसी व्यक्ति का यह इच्छा रखना आपत्तिजनक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि जब कोई व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन में शास्त्रीय मर्यादाओं के अनुरूप शुभ कर्मों को करता है तो समाज में उस की कीर्ति में वृद्धि का होना प्रायः अनिवार्य ही होता है। यदि शुभ कर्मों के करने वाला व्यक्ति अपने शुभ कर्मों और लोकोपकारक कार्यों को करता हुआ यह समझ लेता है कि इन कर्मों के करने से समाज में सन्मान व प्रतिष्ठा पाने के लिए ही समाज सेवा तथा लोकोपकार के कार्यों को करना ही लोकैषणा का विकृत रूप है। ऐसा भी सम्भव हुआ रहता है कि कभी-कभी कर्ता की मान प्रतिष्ठा उसकी आशा के अनुरूप उसे नहीं मिलती। और उसकी समाज सेवा के कार्यों को करना ही छोड़ देता है।

इसी आधार पर हमारे ऋषियों मुनियों ने इस लोकेषणा की भावना को त्यागने योग्य मानकर इसे अपने सामाजिक जीवन में मुख्याधार बनाना निषिद्ध माना है। यदि व्यक्ति अपने इस सामाजिक जीवन में अपनी सुकृतियों और लोकोपकारक कार्यों को करने के लिए अपनी कर्त्तव्य निष्ठा की भावना को ही सदा मुख्याधार बनाकर ही अपने सामाजिक जीवन में कार्यरत होता है तो ऐसी स्थिति तुष्टि दृढ़ व अडिग और स्थिर बनी रहती है। और उसके कार्यों करने की गति और उसकी कार्य क्षमता में कभी भी कोई कमी और शिथिलता नहीं आ सकती।

वैसे ही लोक सेवा के कार्यकर्त्ताओं की समाज में मान प्रतिष्ठा तो सदैव बढ़ती ही रहती है। भले ही वह अपनी इस मान प्रतिष्ठा की आकांक्षा अपने मन में रखें अथवा न रखे। उनकी तुष्टि व मानसिक शान्ति स्थिर बनी रहती है। दूसरों से प्रशंसा व सन्मान के आकांक्षी पुरुष धीरे धीरे जब अपने सामाजिक कृत्यों का मुख्याधार इस लोकेषणा को बना लेते हैं तो फिर उनका लक्ष्य यही बनता जाता है कि सामाजिक क्षेत्र में ऐसे ही कार्य किये जावें जिन्हें लोग पसन्द करते हों और जो लोगों की रुचि के अनुकुल हों। कार्यों के औचित्य या अनौचित्य की भावना गौण बनती जाती है और प्रायः शास्त्र मर्यादाओं की भी उपेक्षा व अवहेलना होनी आरम्भ हो जाती है। जब समाज सेवकों की मानसिक भावनायें लोगों की रूचि अभिरूचि को ही अपनी सभी कृतियों का मुख्याधार बना लेती है। तब समाज सेवकों के कार्यों में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् धीरे-धीरे समाप्त होना आरम्भ हो जाता है और ऐसी स्थिति के बन जाने पर प्रायः सर्वसाधारण वर्ग के लोगों के हितों की भी उपेक्षा आरम्भ हो जाती है।

लोकेषणा से विरक्त उन लोगों की स्थिति अत्यन्त गम्भीर और शोचनीय बना जाया करती है। जो अपने जीवन निर्वाह के लिए समाज पर ही निर्भर हुआ करते हैं। यदि वह दूसरों की शास्त्र विरुद्ध आकांक्षाओं की उपेक्षा करके अपने लोकोपकार के कार्यों में ही रत रहते हैं तो फिर उन्हें अपने जीवन निर्वाह के लिए मिलने वाली सहायता में कमी आ जाया करती है। अथवा वह सहायता मिलनी बन्द हो जाया करती है। तब ऐसी स्थिति में समाज सेवकों को समाज के कर्णधारों की उचित अनुचित सभी आकांक्षाओं की पूर्ति को प्राथमिकता देने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसी से उभय पक्षों का अर्थात् समूचे समाज और समाज सेवकों का उपकार होना आरम्भ हो जाया करता है।

लोकेषणा पर संयम करना साधकों के लिए वित्तेषणा और पुत्रेषणा से अपेक्षाकृत अधिक कठिन हुआ करता है। किन्तु समूचे समाज और समाज सेवकों का हित इसी में ही है क्योंकि इन तीनों एषणाओं का सर्वथा पूर्ण त्याग किया जावे। क्योंकि मानव जीवन के प्रायः सभी दुःखों का मूल कारण यही तीनों एषणायें ही मानी गई हैं।

आर्य समाज अजनाला में वेद प्रचार महोत्सव मनाया गया

आर्य समाज अजनाला जिला अमृतसर में वेद प्रचार सप्ताह के अवसर पर हवन यज्ञ करते हुये आर्य जन एवं माता जगदीश आर्या जी को सम्मानित करते हुये पंडित मुकेश शास्त्री जी, श्री संजय गोस्वामी जी, श्री राकेश काठिया जी, आर्य समाज की प्रधाना श्रीमती प्रमोद आर्य जी, श्री सुमेश जी, श्री अमित कुन्दरा जी।

आर्य समाज अजनाला जिला अमृतसर में वेद प्रचार महोत्सव बड़ी श्रद्धा एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया गया जिसमें आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री विजय शास्त्री जी एवं पंडित अरुण कुमार वेदालंकार भजनोपदेशक ने 22 मार्च से 24 मार्च 2019 तक रात्रि 8.00 बजे से 10.00 बजे तक स्वामी दयानन्द जी के जीवन पर प्रवचन एवं भजन सुना कर आर्य जनता को मंत्रमुग्ध कर दिया। श्री विजय कुमार शास्त्री जी ने कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के उद्देश्य को निर्धारित करते हुए छठे नियम में लिखा है कि–संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने इस नियम में उन्नति के सोपान निर्धारित किए हैं। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में वही व्यक्ति संसार का उपकार कर सकता है जो क्रमशः शारीरिक उन्नति करते हुए आत्मिक उन्नति करता है उसके बाद सामाजिक उन्नति करता है। इस प्रकार जो व्यक्ति संसार का कल्याण करने की भावना रखता है, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् के उद्घोष को सार्थक करना चाहता है उसे इसी क्रम से शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति करते हुए कार्य करना होगा। इस नियम के अनुसार चलते हुए मनुष्य जितना शारीरिक एवं आत्मिक रूप में उन्नत होगा उतना ही समाज, राष्ट्र एवं संसार की उन्नति होगी।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य अपने को सुखमय तथा शक्ति सम्पन्न बनाना है। इस उद्देश्य कर पूर्ति तभी सम्भव हो सकती है जब हमारे शरीर नीरोग तथा सबल हों। मनुष्य का जीवन एक संग्राम भूमि है जिसमें हमें प्रतिदिन सैकड़ों विरोधी शक्तियों से युद्ध करना पड़ता है। अतः इस जीवन संग्राम में वही विजय हो सकता है जो बल और शक्ति से पूर्ण है। वेद में भी मानव प्रार्थना करता है कि विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्। अर्थात् मैं सब प्रकार के बलों का स्वामी बनकर सब दिशाओं में विजय प्राप्त करूं। आज संसार शक्ति का उपासक है अर्थात् जिसके पास शक्ति और बल है, संसार के प्राणी उसका ही सम्मान करते हैं। शक्ति सम्पन्न मनुष्य को सताना तो दूर रहा, कोई भी मनुष्य उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देख सकता। इसके विपरीत कमजोर मनुष्य को हर कोई सताता तथा पीड़ा पहुंचाता है। अतः यदि हम अपने जीवन को सुखमय तथा शक्तिसम्पन्न बनाना चाहते हैं और संसार में प्रतिष्ठा और सम्मान से जीना चाहते हैं और इस अमूल्य मानव जीवन को यूं ही न खोकर उसके द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं तो हमें सबसे पहले अपने शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाना होगा। शरीर के स्वस्थ और बलवान बन जाने पर मन अपने आप ही थोड़े से साधन द्वारा बलवान् तथा दिव्य शक्तियों का केन्द्र बन जाएगा। क्योंकि शरीर और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर के सूक्ष्म तत्वों से ही मन बनता है। अतः शरीर के बलवान् होने पर मन में भी उमंग और उत्साह होगा।

श्री अरुण कुमार वेदालंकार जी के बहुत ही सुन्दर भजन हुये। श्री पंडित मुकेश शास्त्री जी ने कहा कि यह आर्य समाज कई वर्षों से निष्क्रिय थी लेकिन आज पुनः इसमें वेद कथा से शुभारम्भ किया गया है जिसमें विशाल शान्ति यज्ञ का

(शेष पृष्ठ चार पर)

आर्य समाज राजपुरा टाउन में अर्थर्ववेदीय महायज्ञ सम्पन्न

आर्य समाज मंदिर राजपुरा टाउन में अथर्ववेदीय महायज्ञ की पूर्णाहुति डालते हुये यजमान। चित्र दो में उपस्थित जनसमूह एवं चित्र तीन में वैदिक प्रवक्ता आचार्य आर्य नरेश जी को सम्मानित करते हुये आर्य समाज राजपुरा के प्रधान श्री विजय आर्य जी एवं उनके सहयोगी।

आर्य समाज मंदिर राजपुरा टाउन में 18 मार्च से 24 मार्च 2019 तक अथर्ववेदीय महायज्ञ, ऋषि बोधोत्सव एवं वार्षिकोत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर आर्य जगत के ख्याति प्राप्त वैदिक प्रवक्ता आचार्य श्री आर्य नरेश जी उदगीध साधना स्थली राजगढ हिमाचल प्रदेश के प्रवचन एवं प्रसिद्ध वैदिक भजनोपदेशिका बहिन अंजली आर्या करनाल के मधुर भजन हुये। 18 मार्च सोमवार से 23 मार्च शनिवार तक प्रतिदिन प्रातः 6.00 बजे से 9.00 बजे तक यज्ञ और प्रवचन आचार्य श्री आर्य नरेश जी के हुये और भजन बहन अंजली आर्या जी के हुये और इसी तरह सायं 4.00 बजे से 7.00 बजे तक भजन एवं प्रवचन होते रहे जिसमें आर्य परिवारों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। आचार्य आर्य नरेश जी ने प्रतिदिन आर्य जनता को वेदों का अमृत पान करवाया। पूर्णाहुति रविवार 24 मार्च को प्रातः 8.00 बजे से 1.30 बजे तक 151 यजमानों द्वारा प्रदान की गई। पूर्णाहुति पर अपने प्रवचन में आचार्य आर्य नरेश जी ने बताया कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज की स्थापना करके समस्त मानव जाति का जो उपकार किया है, उस ऋण को नहीं चुकाया जा सकता। जितना सन्मार्ग महर्षि दयानन्द ने दिखाया है, जितना कुरीतियों के खिलाफ महर्षि दयानन्द ने आवाज उठाई है, नारी जाति को शिक्षा का अधिकार दिलाने के लिए जितना संघर्ष महर्षि दयानन्द ने किया है उतना किसी अन्य महापुरूष ने नहीं किया। महर्षि दयानन्द ने धार्मिक क्षेत्र में पाखण्ड, मूर्तिपूजा, अन्धविश्वास के ऊपर जमकर प्रहार किया। राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति पर जोर दिया। सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने नारी जाति के उद्धार,विधवाओं की दुर्दशा को सुधारने और बाल विवाह जैसी कुरीतियों को दूर करने पर बल दिया। इसलिए हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम भी महर्षि के ऋण से उऋण होने का प्रयास करें महर्षि दयानन्द के जन्मदिवस एवं बोधोत्सव के पर्व पर हम अपने-अपने

(शेष पृष्ठ चार पर)

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**

आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।